Journal of Advances in Developmental Research (IJAIDR)

E-ISSN: 0976-4844 ● Website: www.ijaidr.com ● Email: editor@ijaidr.com

सामन्तवाद का उदय एवं पतन एक अध्ययन के रूप में

चन्द्रप्रकाश कारपेंटर

शोधकर्ता
विषय - इतिहास
झालावाड़ रोड खानपुर जिला झालावाड़ राजस्थान

सामन्तवाद का अर्थ –

सामन्त तन्त्र अथवा सामन्तवाद जिसे अंग्रेजी भाषा में "फ्यूडेलिज्म" कहा जाता है, मध्यकालीन यूरोपीय इतिहास की एक प्रमुख विशेषता रही है; क्योंकि उस युग की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाएँ इसी सामन्त तन्त्र के आधार पर टिकी हुई थीं। इतिहासकार विलंडूरा के शब्दों में, "इतिहास की अधिकांश आर्थिक और सामाजिक रचनाओं के समान सामन्त तन्त्र भी स्थान, समय और मानव स्वभाव की आवश्यकताओं के अनुकूल था।" आज हमें यह प्रथा भले ही अनुचित लगे, परन्तु अपने आरम्भिक काल में सामन्त प्रथा न्यायसंगत एवं उचित होने के साथ-साथ कल्याणकारी भी रही थी। प्लैट एवं ड्रमंड के अनुसार, "जिस जमीन या स्वत्व पर अपने से ऊपर की किसी शक्ति को शुल्क देना पड़ता है, वह क्षेत्र "फ्यूड" कहलाता था। ऐसे एक या अनेक क्षेत्रों का मालिक "फ्यूडल लार्ड" कहलाता था।" फ्यूडल लार्ड के लिये हिन्दी में सामान्यतः "सामन्त" शब्द और उनकी परम्परा या प्रणाली के लिये "सामन्त तन्त्र" शब्द का प्रचलन हुआ है।

सामन्तवाद का उदय :

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - सामन्त-तन्त्र का जन्म किसी शासक की आज्ञा अथवा कुछ व्यक्तियों के संयुक्त प्रयास की उपज नहीं था। इसकी उत्पत्ति अपने आप स्वाभाविक रूप से हुई थी। पाँचवीं सदी के आरम्भ में जब रोमन साम्राज्य खण्ड-खण्ड होकर लड़खड़ाने लग गया तो सम्पूर्ण यूरोप अराजकता एवं अव्यवस्था में डूब गया। रोमन साम्राज्य को पूर्व और उत्तर की दिशाओं से बर्बर लुटेरे समूहों ने रौंद डाला। ये बर्बर लोग भारत-यूरोपीय मूल की भाषाएँ बोलने वाले बहुत से जर्मन कबीले थे, जो रोमन साम्राज्य की सीमा से दूर उत्तर सागर से कृष्ण सागर तक के क्षेत्र में घूमते-फिरते थे। ये जर्मन लोग "ट्यूटन" या "गौथ" नाम से भी पुकारे जाते थे। इन जर्मन कबीलों पर हूणों ने धावा बोला था। हूण लोग मध्य एशिया के यायावर घुड़सवार थे। चीन के हानवंशी शासकों ने हूणों को मध्य एशिया से खदेड़ दिया था। इस प्रकार, चीनी लोगों ने हूणों को खदेड़ा, हूणों ने जर्मन कबीलों को खदेड़ा और जर्मन लोग भागकर रोमन साम्राज्य में घुसने लगे। इसलिये कई विद्वान् यह कहते हैं कि जर्मन लोगों ने रोमन साम्राज्य पर आक्रमण नहीं किया था, अपितु वे आश्रय की तलाश में रोमन साम्राज्य में घुस आये हैं।

चौथी शताब्दी के अन्तिम काल में लगभग दो लाख जर्मनों (विसि गौथों अथवा पश्चिमी गौथों) ने डेन्यूब नदी को पारकर रोमन साम्राज्य में प्रवेश किया। रोमन सम्राट ने उन्हें हूणों से सुरक्षा प्रदान करने का आश्वासन दिया, परन्तु यह शर्त भी रखी कि उन लोगों को रोमन सैनिक बनकर लड़ना पड़ेगा। परन्तु कुछ दिनों बाद ही रोमन अधिकारियों के अमानवीय व्यवहार से पीड़ित होकर जर्मन लोगों ने विद्रोह कर दिया और 378 ई. में एड्रियानोपल

के युद्ध में रोमनों को बुरी तरह से पराजित किया। युद्ध में प्राप्त सफलता से जर्मनों का उत्साह बढ़ गया और वे रोमन साम्राज्य पर टूट पड़े। 410 ई. में रोम पर भी उनका अधिकार हो गया। रोम से जर्मनों ने दक्षिणी फ्रांस और स्पेन पर धावा मारना शुरू किया और इन क्षेत्रों पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

विसिगौथों के अलावा अन्य जर्मन कबीलों ने भी रोमन साम्राज्य के कई क्षेत्रों पर अपना अधिकार कायम कर लिया। ये जर्मन कबीले आपस में भी लड़ते रहते थे। उदाहरणार्थ, स्पेन में वांडाल (जर्मन कबीले का नाम) विसिगौथों से लड़े थे और 455 ई. वाडोलों ने भी रोम को लूटा था। 476 ई. में एक अन्य जर्मन सेनापति ओडोआचार ने अन्तिम रोमन सम्राट को सिंहासन से हटाकर स्वयं रोम का शासक बन बैठा। 500 ई. के आस-पास पूर्वी गौथों (औस्ट्रो गौथों) के नेता थियोडोरिक ने ओडोआचार को मारकर रोम के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। 568 ई. में एक अन्य जर्मन कबीले " लोम्बार्ड" ने उत्तरी इटली पर आक्रमण कर उस क्षेत्र को जीत लिया।

नवीं और दसवीं शताब्दियों में स्कैंडिनेविया (आजकल का नार्वे, स्वीडन और डेन्मार्क) में रहने वाली अर्द्ध सभ्य जर्मन जातियों ने यूरोप के कई भागों पर आक्रमण किये। उन्हें "नौर्थमेन" (उत्तरी मनुष्य) के नाम से पुकारा जाता था। इन लोगों ने इंगलैण्ड, आयरलैण्ड, फ्रांस के नोर्मन प्रदेश, रूस, दक्षिणी इटली, सिसली, फिनलैण्ड आदि अनेक क्षेत्रों को जीतकर अपने राज्य स्थापित किये। ईसाई धर्म स्वीकार करने के पूर्व नौर्थमेन पाशविक युद्धों और स्त्रियों तथा बच्चों को मारने में गौरव का अनुभव करते थे। उनकी लूट-खसोट तथा तोड-फोड़ से रोम की सांस्कृतिक उन्नति को गहरा आघात पहुँचा।

रोमन साम्राज्य में आने वाली सभी जर्मन जातियों में सबसे अधिक प्रगतिशील फ्रैंक लोग थे, जिन्होंने अपने नेता क्लोविस (465-511 ई.) के नेतृत्व में सम्पूर्ण गाल (आज का फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड और पश्चिमी जर्मनी) पर अधिकार जमा लिया। क्लोविस के उत्तराधिकारी कमजोर निकले और राजभवन के प्रधान अधिकारी (जिसे "मेयर" कहा जाता था) पेपिन ने राजसत्ता हथिया ली। पेपिन का पुत्र शार्लमेन (अंग्रेजी में चार्ल्स महान्) बड़ा प्रतापी शासक हुआ। उसने 768 से 814 ई. तक शासन किया। उसका विशाल साम्राज्य उत्तरी सागर से इटली के मध्य तक और अन्ध महासागर से एल्ब नदी तक फैला हुआ था। चूँकि इस विशाल साम्राज्य पर एक व्यक्ति अकेला शासन नहीं कर सकता था, अतः शार्लमेन ने अपने युद्ध अभियानों में सहायता देने वालों को बड़े-बड़े भूमि खण्ड दिये, जिन पर उन्हें शासन करना था। इन भूमि खण्डों को "काउण्टी", "इची" और " मार्क्स" कहा जाता था और इनके शासकों को क्रमशः "काउण्ट", "ड्यूक" तथा "मार्किवस" कहा जाने लगा। इस प्रथा के कारण लोगों के पास बड़ी-बड़ी भू-सम्पत्तियाँ बन गईं और किसान अपने भूमि-स्वामित्व से वंचित हो गये।

शार्लमेन की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों में एकता न रही और उसका विशाल साम्राज्य तीन प्रमुख राज्यों- जर्मनी, फ्रांस और इटली में विभाजित हो गया। इसी समय इन राज्यों पर बंजारे स्लाव लोगों, स्पेनं के मूर लोगों और उत्तरवासियों के आक्रमण शुरू हो गये जिससे पुनः अव्यवस्था फैल गई। राजाओं को अपने राज्यों पर नियन्त्रण रखना कठिन हो गया। सामन्तों के बीच आपसी लड़ाइयाँ बढ़ गई और बाहरी आक्रमणों ने लोगों का जीना ही मुश्किल कर दिया। इस सन्दर्भ में एच. जी. वेल्स ने लिखा है कि, "उस समय के संसार के हालात की कल्पना करना

सामन्तवाद का विकास- सामन्तवाद जीवन का वह मार्ग था जो शार्लमेन के बाद के काल की विशिष्ट परिस्थितियों में अपनाया गया था। मूलतः यह भूमि की पट्टेदारी (स्वामित्व) पर आधारित एक सरकार का स्वरूप तथा एक आर्थिक पद्धति- दोनों ही था। परन्तु जबकि स्वयं सामन्तवाद में एक विशिष्ट प्रकार की समानता का विकास हुआ। सामन्ती प्रथाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान, और भिन्न-भिन्न समयों में अलग-अलग स्वरूप धारण करती रहीं। इसलिए आगे के

पृष्ठों में जिस सामन्तवाद का उल्लेख किया गया है उसे केवल पश्चिमी यूरोप के सामन्त-तन्त्र की सामान्य विशेषताएँ समझना ठीक रहेगा।

सामन्तवाद का विकास भिन्न-भिन्न कालों की आवश्यकताओं के अनुकूल संशोधित रोमन, जर्मन और शायद सेल्टिक प्रथाओं से हुआ। इस समूचे विकास क्रम में दो प्रकार के सम्बन्धों का विशेष महत्त्व बना रहा (1) मनुष्य और मनुष्य के मध्य व्यक्तिगत सम्बन्ध, और (2) भूमि की पट्टेदारी अथवा भूमि का स्वामित्व। सैनिक सेवा पर आधारित मनुष्यों के मध्य सम्मानजनक सम्बन्धों वाली "वासलेज" नामक संस्था पहले प्रकार के सम्बन्ध को उजागर करती है। यद्यपि वासलेज का जन्म विवादाग्रस्त है, परन्तु सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि शार्लमेन के उत्तराधिकारियों के काल में "वासल" (अनुचर) का अभिप्राय अपने से ऊँचे व्यक्ति के अन्तर्गत लड़ने वाले व्यवसायी व्यक्ति से था। इस बीच, बिशप और काउण्ट जैसे अन्य बहुत से प्रभावशाली लोग जिनके अधिकार में बड़े-बड़े भूमि खण्ड थे, "फीडलस" अथवा "होमीनेज" (स्वामी भक्त) के रूप में राजा के साथ सम्बन्धित हो गये। बाद में शार्लमेन के उत्तराधिकारियों ने यह अनुभव किया कि मुसलमानों का मुकाबला करने के लिये एक सुसंगठित अश्वारोही सेना की आवश्यकता है, अतः वासल को घोड़ा रखने और सैनिक सेवा देने के बदले में भूमि का विशेष अनुदान दिया गया। इस प्रकार का अनुदान "बेनीफिस" कहलाता था और अनुदान में दी गई भूमि से वासल अपना तथा अपने घोड़े का खर्चा सरलता से पूरा कर सकता था। बाद में, सभी भूमिपतियों और प्रभावशाली लोगों से भी सैनिक सहयोग की अपेक्षा की जाने लगी। समय के साथ-साथ ये परम्पराएँ कानून का रूप ले बैठीं और तब इनसे सम्बन्धित समारोहों पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा। अपने स्वामी का" आदमी" (होमो) बनने के लिये वासल (अनुचर) को स्वामिभक्ति के कुछ कार्य सम्पादित करने पड़ते थे। चूँकि उसकी स्वामिभक्ति ही मुख्य बात थी, अतः उसे अपने स्वामी के प्रति "स्वामिभक्ति" की शपथ भी लेनी पड़ती थी।

सामन्तवाद के विकास के कारण- सामन्तवाद के विकास में दो कारणों का विशेष योगदान रहा है। एक राजनीतिक कारण और दूसरा आर्थिक कारण। पहले हम राजनीतिक कारण की चर्चा करेंगे। अपने उत्कर्ष काल में रोम ने लगभग समूचे पश्चिमी यूरोप पर अधिकार जमा लिया था और एक लम्बे समय तक रोमनों ने पश्चिमी यूरोप को शान्ति एवं सुव्यवस्था प्रदान की। परन्तु रोमन साम्राज्य के विघटन काल में पश्चिमी यूरोप अराजकता, अशान्ति और अव्यवस्था का शिकार बन गया। इसी के साथ बाह्य आक्रमणों का सिलसिला भी शुरू हो गया। परिणामस्वरूप किसानों का संकट बढ़ गया, क्योंकि उनकी सुरक्षा करने वाला कोई नहीं था। सभी लोग उसे लूटने वाले थे। ऐसी स्थिति में खेती करना और पैदावार को ले लेना भी सम्भव नहीं था। रोमन साम्राज्य की अवनति के समय बड़े-बड़े कुलीन सरदार भी अपने-अपने गाँवों में लौट आये थे, जहाँ उनके शक्तिशाली दुर्ग अथवा गढ़ थे। रात्रि के अन्धेरे में ये कुलीन सरदार अपने सैनिक अनुचरों के साथ दुर्गों से निकल कर आस-पास के किसानों को लूटने लगे। कभी-कभी अपने ही जैसे कुलीनों पर धावा मारकर अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास भी किया करते थे। कुलीन सरदारों की लूट-खसोट ने पहले से परेशान किसानों की मुसीबत को और भी अधिक बढ़ा दिया। ऐसी स्थिति में न तो किसान सुखी था और न कुलीन सरदार। क्योंकि सरदारों को भी आये दिन दूसरे सरदारों के हमलों की चिन्ता लगी रहती थी। अतः दोनों को एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता आ पड़ी। किसानों को अपनी रक्षा के लिये कुलीन सरदारों के आश्रय की आवश्यकता थी, क्योंकि उनके पास अस्त्र-शस्त्र तथा दुर्ग थे। कुलीन सरदारों को धन के साथ-साथ सेना में भर्ती होने वाले लोगों

2 [सामन्ती कार्य विधि-वास्तविक व्यवहार में सामन्त तन्त्र को कार्य विधि का उल्लेख करते समय एक बात ध्यान रखने योग्य है कि प्रथाएँ अथवा रूढ़ियाँ एक देश से दूसरे देश में और यहाँ तक कि एक ही देश के भीतर भी काफी

भिन्न थी। सामान्य रूप में एक सामन्ती राज्य एक राजा के अन्तर्गत फीफो (जागीरों) का एक प्रकार से संघ था। सामन्ती सिद्धान्त के अनुसार राजा समस्त वासलों (सामन्तों) का सर्वोच्च सामन्त स्वामी था। उसका राज्य ईश्वर द्वारा प्रदत्त फीफ थी। कई राज्यों में तो राजाओं की सत्ता नाम मात्र की ही होती थी। परन्तु सामान्यतयः एक सामन्ती राजा की शक्ति उसके स्वयं की भूमि के आकार पर निर्भर करती थी, अर्थात् अपने सामन्तों की भूमि की तुलना में उसके अपने पास कितनी भूमि है। शक्तिशाली सामन्तों को एक-दूसरे से लड़ाकर अथवा उनमें सन्तुलन बनाकर अपना प्रभाव बनाये रखने की राजनीतिक योग्यता के आधार पर ही राजा की शक्ति निर्भर करती थी। विवाह तथा मृत्यु के अवसेरों पर भी राजा को अपने सामन्तों की क्षति पर अपना प्रभाव बढ़ाने का अवसर मिल जाता था।

राजा के नीचे उसके शक्तिशाली भूमिपति (सामन्त) होते थे, जिनके अधिकार में राजा द्वारा प्रदत्त बड़े-बड़े भूमि खण्ड थे। इनमें से अधिकांश भूतपूर्व साम्राज्य के ड्यूक, काउण्ट और मार्विवस थे। अन्तर इतना ही था कि पहले वे राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे और अब वे वंशानुगत हो गये थे। इन्हें व्यक्तिगत रूप से राजा को श्रद्धा अर्पित करनी पड़ती थी। उपर्युक्त अधिकारियों के अलावा राजा के अपने सामन्तों में बिशप, एबाट नामक धर्माधिकारी और बैरन तथा अन्य छोटे-छोटे सामन्त भी सम्मिलित थे। इन सभी के पास भी राजा द्वारा प्रदत्त "फीफ" थी और ये भी राजा के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा रखते थे।

बड़े-बड़े सामन्त अपनी भूमि के छोटे-छोटे भाग जिन्हें लघु फीफ कहा जाता था, अपने "वासलों" (अनुचरों) में बाँट देते थे। परिणामस्वरूप वासल के भी वासल और फीफ में भी फीफ अस्तित्व में आ गई। बड़े सामन्त अपने वासलों के साथ भी कई प्रकार की शर्तें तय कर लेते थे। वासल के वासल सामान्य तौर पर "बैरन" कहे जाते थे। ये लोग भी अपने हिस्से की भूमि का कुछ भाग दूसरे लोगों को देकर उन्हें अपना उप-अनुचार बना सकते थे। उप-अनुचर भी आगे फिर ऐसा ही कर सकते थे। चर्च के धर्माधिकारी लोग भी भूमिपति (लार्ड) अथवा वासल (अनुचर) या दोनों ही बन सकते थे। सामन्ती व्यवस्था की सबसे निचली सीढ़ी पर कृषक दास (सर्फ) थे जो अपनी भूमि के साथ बँधे होते थे।

सामन्तों के कर्त्तव्य-सामान्यतः सामन्तों के कर्तव्य बहुत सुनिश्चित होते थे, पर स्थान-स्थान पर वे कुछ अलग-अलग होते थे। सामन्तों को मुख्यतया तीन कार्य सम्पादित करने पड़ते थे- (1) सरकार सम्बन्धी अर्थात् न्याय, (2) वित्तीय, और (3) सेना सम्बन्धी।

(सामन्त को अपने लार्ड के दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। यह उपस्थिति समय-समय के लिये आवश्यक थी अथवा जब भी लार्ड द्वारा कहा जाता तो उसे लार्ड के दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। दरबार में वह अपने लार्ड को नीति सम्बन्धी मामलों पर सलाह देता था अथवा अन्य सामन्तों के साथ न्यायालय में न्यायाधीश की हैसियत से अभियोगों की सुनवाई करके न्याय प्रदान करता था। अपने अधिकृत क्षेत्र और उसके निवासियों की जान-माल की रक्षा करना भी सामन्त का कर्तव्य होता था।

दूसरा मुख्य कर्तव्य अपने लार्ड को वित्तीय सहयोग देना था। यह आर्थिक सहयोग उसकी भूमि के आकार की दृष्टि से तय किया जाता था, अर्थात् अधिक भूमि वाले सामन्त को अधिक धन देना पड़ता था और कम भूमि वाले सामन्त को कम धन देना पड़ता था। आर्थिक सहायता मुख्यतः तीन अवसरों पर दी जाती थी- (1) लार्ड के बड़े लड़के के "नाइट" होने के अवसर पर, (2) लार्ड की सबसे बड़ी लड़की के विवाह के समय, और (3) यदि उसका लार्ड किसी के द्वारा बन्दी बना लिया जाये अथवा कोई उसका अपहरण कर ले तो उसकी मुक्ति के लिये आवश्यक धनराशि सामन्तों को जुटानी पड़ती थी। लार्ड को सामन्त द्वारा दिया गया धन "एड" अथवा नजराना कहलाता था। इसके

बदले में लार्ड पर सामन्त की जान-माल की सुरक्षा की जिम्मेदारी होती थी। उपर्युक्त तीन मुख्य एडों के अलावा सामन्तों को "रिलीफ" नामक भुगतान भी करना पड़ता था। यह एक प्रकार से "उत्तराधिकार शुल्क" था। सामन्त की मृत्यु के बाद जब उसका लड़का अपने पिता की भूमि का स्वामी बनता तो उसे अपने लार्ड को उत्तराधिकार शुल्क चुकाना पड़ता था जो कि काफी अधिक होता था। बिना उत्तराधिकार शुल्क चुकाये वह अपने पिता की भूमि का वैधानिक मालिक नहीं माना जाता था और उस भूमि की व्यवस्था भी लार्ड के अधिकारियों के नियन्त्रण में रहती थी।

अपने लार्ड को सैनिक सहायता अथवा सेवा प्रदान करना सामन्त की सबसे बड़ी जिम्मेदारी मानी जाती थी, क्योंकि सैनिक सेवा सामन्ती व्यवस्था की रीढ़ थी। प्रत्येक सामन्त से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह व्यक्तिगत रूप में एक सशस्त्र यौद्धा की हैसियत से अपने लार्ड की सेवा करेगा। यदि सामन्त की भूमि अधिक होती तो उसे उसी अनुपात से निश्चित संख्या में अश्वारोही सैनिक भी जुटाने पड़ते थे और इसके लिये वह अपनी भूमि का कुछ क्षेत्र उप-अनुचरों को देता था। परन्तु यह सैनिक सेवा सीमित होती थी। लार्ड के दुर्ग तथा महलों की गश्त की ड्यूटी इसके अतिरिक्त होती थी।

सामन्त तन्त्र में कुछ जटिलताएँ भी थीं। महत्वाकांक्षी सामन्तों, जो अपनी जागीर को बढ़ाने में रुचि रखते थे, वे एक से अधिक लार्डों के वासल बन सकते थे और इस सम्बन्ध में उन्हें रोकने बाला कोई नियम या व्यवस्था प्रचलित नहीं थी। किसी-किसी सामन्त के तो सात-आठ लार्ड होते थे। इस प्रकार की स्थिति में स्वामिभक्ति का मामला बहुत पेचीदा हो जाता था, खासकर विवाद अथवा युद्ध के समय। ऐसा भी हो सकता था कि युद्धरत दोनों लार्डों के प्रति एक सामन्त की निष्ठा रही हो और उसने दोनों से ही फीफ प्राप्त की हो। इस प्रकार की स्थिति आने पर सामन्त लोग अपने स्वार्थों को ध्यान में रखकर ही पक्ष-विशेष का साथ देते थे, क्योंकि सामन्त तन्त्र में इस प्रकार के युद्ध और अवसर प्रायः आते ही रहते थे।

निष्कर्ष...कुछ विद्वानों का मानना है कि सामन्ती व्यवस्था ने व्यापार-वाणिज्य की उन्नति को अवरुद्ध कर दिया। उनका मत है कि सामन्तों की केवल अपनी जागीरों की ही चिन्ता लगी रहती थी और उन्होंने सार्वजनिक मार्गों की सुरक्षा तथा सड़कों की मरम्मत की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। मार्गों पर लुटेरों तथा डाकुओं का बोलबाला था और वे लोग प्रायः व्यापारियों को लूट लेते थे। कई बार तो स्वयं सामन्त ही व्यापारिक काफिलों को लूट लेते थे। इससे भी बड़ी बाधा चुंगी-कर की थी। प्रत्येक सामन्त अपनी जागीर से गुजरने वाले व्यापारिक सामान पर चुंगी वसूल करता था। इससे व्यापारियों को तो कठिनाई होती ही थी, परन्तु निर्धारित स्थान तक सामान के पहुँचते-पहुँचते उसकी कीमत काफी बढ़ जाती थी। ऐसी स्थिति में व्यापार-वाणिज्य की उन्नति सम्भव न थी। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि सामन्तों ने व्यापार-वाणिज्य को पुनः उन्नत बनाने में सहयोग प्रदान किया और उन्होंने व्यापारियों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की।

सामन्तवाद का एक अवगुण यह रहा कि इसने राजा की शक्ति को पंगु बना दिया। राजा केवल नाममात्र के लिये राज्य का अध्यक्ष रह गया। सामन्त लोग स्वतन्त्र शासकों की भाँति शासन करते थे। इससे यूरोपीय राज्यों में विकेन्द्रीकरण की पद्धति ने जोर पकड़ा और सार्वभौम सत्ता का अस्तित्व संकट में फँस गया। सामन्ती व्यवस्था ने प्राचीनकाल में विकसित नागरिकता के सिद्धान्त को भी जबरदस्त आघात पहुँचाया, क्योंकि अब नागरिकता का कोई महत्त्व नहीं रह गया था और कोई भी व्यक्ति नागरिक अधिकारों तथा सुविधाओं की माँग करने की स्थिति में भी नहीं था। पहले लोग नागरिक के नाते देश की रक्षा करना अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे। अब वे विवश किये जाने पर सामन्ती सेना में अनिच्छा से भर्ती होते थे। उनमें देश प्रेम जैसी कोई बात नहीं रह गई थी। इसीलिये एक

विद्वान् ने लिखा है कि, "सामन्ती युग में राष्ट्रीयता और जनतन्त्र की आधुनिक भावना का सर्वथा अभाव न था। न कोई राष्ट्रीय सेना थी और न कोई राष्ट्रीय राजा। राजा राष्ट्र का शासक नहीं था, अपितु वह भूमिपति और भूमिपतियों का नेता मात्र था।"

सामन्ती प्रथा ने चर्च को भी दूषित कर दिया। जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है कि चर्च के धर्माधिकारी भी सामन्त बन सकते थे; यूरोप की अधिकांशतः भूमि पर चर्च का आधिपत्य हो चुका था। चर्च के अधिकारी प्रायः सामन्तों का पक्ष लेते थे और उनके हितों की रक्षा करते थे। पादरी लोग कृषकों तथा कृषक दासों से "टाइथ" नाम का एक विशेष धार्मिक कर भी वसूल करते थे। चर्च के इस सामन्ती स्वरूप के कारण धर्माधिकारी लोग भोग-विलासी तथा व्यभिचारी बन गये। इससे चर्च का पतन शुरू हो गया और सुधारों की माँग उठने लगी। धर्म सुधार आन्दोलन इसी की उपज था।

संदर्भ –

1. वंडर दैट वाज इंडिया ,पृ .19
2. डॉ .कैलाश चन्द्र जैन ,प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं ,पृ .205-6
3. वैदिक इंडेक्स ,भाग .प्ए पृ .471-73 ऋग्वेद10 /155/3
4. मुकर्जी ,आर.के., हिस्ट्री ऑफ इंडियन शिपिंग ,पृ .90
5. जातक जिल्द पी प. 127-129
6. राधा कुमुद मुकर्जी : हिस्ट्री ऑफ इंडियन शिपिंग ,पृ .82
7. रोमिला थापर ,भारत का इतिहास ,पृ .95
8. प्रो .श्याममनोहर मिश्रा ,प्राचीन भारत का आर्थिक जीवन ,पृ .291
9. ओमप्रकाश ,प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास ,पृ.108
10. आर.के .मुकर्जी ,हिस्ट्री ऑफ इंडियन शिपिंग ,पृ .174
11. आर.सी .मजुमदार,दि क्लिासिकल ,पृ. 598
12. नियोगी ,पुष्पा, इकनामिक हिस्ट्री ,पृ.174-176
13. नियोगी ,पुष्पा, इकनामिक हिस्ट्री ,पृ .146
14. आर.सी .मजूमदार ,द एज ऑफ इंपीरियल कन्नौज ,पृ .403